ISSN : 2230-8997

सहृदय

(भाषा, साहित्य, संस्कृति, संवेदना और शोध का त्रैमासिक)

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के
आंशिक वित्तीय सहयोग से प्रकाशित)

वर्ष-6 अंक-22 अक्टूबर-दिसंबर 2014

संपादक
डॉ. पूरनचंद टंडन

कार्यकारी संपादक
डॉ. सुनील कुमार तिवारी

'नव उन्नयन'
'संकल्प', डी -- 67, शुभम् एन्क्लेव, पश्चिम विहार
नई दिल्ली -- 110063

सहृदय
भाषा, साहित्य, संस्कृति, संवेदना और शोध का त्रैमासिक
अंक : 22, अक्टूबर-दिसंबर, 2014

प्रकाशक
नव उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी, नई दिल्ली

संपादक : डॉ. पूरनचंद टंडन

कार्यकारी संपादक : डॉ. सुनील कुमार तिवारी

संपादन : अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

संपादकीय एवं ग्राहकीय संपर्क
'सहृदय', नव उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी
'संकल्प', डी-67, शुभम् एन्क्लेव, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063
चलभाष : 9810287732, 9810734820

मॉरिशस प्रतिनिधि

डॉ. राजरानी गोबिन, आले ब्रियाँ, कास्टेल, फेनिक्स, मॉरिशस, **दूरभाष :** 002307545027

सिंगापुर प्रतिनिधि
Anju Sharma, 35 Simei Rise # 07,10
Savannah Condo Park, Singapore,528781
E-mail : anjulee_03@hotmail.com, sanjeev673@hotmail.com
Phone : 006590673705

प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से 'नव उन्नयन' या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायक्षेत्र दिल्ली होगा।

अंक का मूल्य : 45/- रुपए

सदस्यता शुल्क : व्यक्तिगत (वार्षिक) 225/- रुपए, **आजीवन :** 2500/- रुपए (डाक व्यय सहित)

संस्थागत : वार्षिक : 400/- रुपए, **आजीवन :** 5000/- रुपए (डाक व्यय सहित)

विदेशों के लिए

एक अंक : 5 डॉलर, **वार्षिक :** 20 डॉलर, **आजीवन :** 200 डॉलर

(सारे भुगतान मनीऑर्डर/चेक/बैंक ड्राफ्ट द्वारा 'नव उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी' के नाम से देय। दिल्ली से बाहर के चेक में 75 रुपए अधिक जोड़ें।)

टाइपसैटिंग एवं कवर डिजाइन : प्रवीण कुमार भारद्वाज
फोन : 011-22135900, 9811357243
E-mail : hemadriprakashan@gmail.com, archanaprinter2009@gmail.com

मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स

अनुक्रम

डायरी में कितना दर्ज किया जा सकता है! / **संपादकीय** – (v)

आलेख

भाषा के सजग प्रहरी शमशेर बहादुर सिंह / **प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी** – 1

रामविलास शर्मा की दृष्टि में अज्ञेय / **गुड़िया कुमारी** – 7

रामधारी सिंह 'दिनकर' : राष्ट्रवादी ओज व पौरुष के कवि / **डॉ. पवनजीत चतुर्वेदी** – 15

साहित्य और आतंकवाद / **रजनी सिंह** – 25

हजारी प्रसाद द्विवेदी का लोक तत्त्व चिंतन / **डॉ. रमाकांत** – 31

कबीर : भक्त, कवि और समाज-सुधारक / **डॉ. अर्चना उपाध्याय** – 35

भगत सिंह का आधुनिक-सांस्कृतिक पाठ
(संदर्भ : 'मैं नास्तिक क्यों हूँ') / **डॉ. प्रकाश चंद्र भट्ट** – 41

सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों का संकट और
साहित्यकार का दायित्व / **डॉ. राकेश कुमार शर्मा** – 49

भाषा-चिंतन

भाषा की अनस्थिरता / **डॉ. आनंद कुमार शुक्ल** – 53

दलित-आदिवासी-स्त्री विमर्श

दलित सिद्धांत और स्त्री विमर्श / **डॉ. सुमन कुमारी** – 56

नागा आदिवासी संघर्ष : जेलियांगरांग आंदोलन (1932) / **केदार प्रसाद मीणा** – 64

लोक साहित्य

हिंदी और असमिया भाषा की समानार्थक लोकोक्तियाँ / **हिरण वैश्य** – 71

मीडिया

व्यंग्य और व्यंग्य-चित्र (कार्टून) : अलगाव के कुछ बिंदु / **डॉ. अनुशब्द** – 76

समकालीन हिंदी साहित्य का बदलता तेवर और मीडिया / **डॉ. तेज नारायण ओझा** — 81

ग़ज़ल/कविताएँ

ग़ज़ल / **प्रभात कुमार** — 86

अनहद नाद, अहंकार को मिटाती है कविता,
अपना लो माँ / **डॉ. बसंत कुमार बंसल** — 87

कहानी

वेलेनटाइन डे की गौरव-गाथा / **डॉ. आलोक रंजन पांडेय** — 89

पुस्तक समीक्षा

मातृभाषा में बात नहीं करता / **डॉ. कालीचरण झा** — 93

मानवता की अवधारणा और भवानीप्रसाद मिश्र का काव्य / **डॉ. विनीता कुमारी** — 97

संगीत

संगीत : जीवनदायिनी शक्ति / **डॉ. वंदना शर्मा** — 102

सेहत

योग बनाम आरोग्य / **डॉ. सुधा पांडेय** — 105

धारावाहिक

भारत की वैश्विक विरासत : वेद / **डॉ. अजय झा** — 109

पद-यात्रा

पद-यात्रा / **डॉ. विनीता कुमारी** — 111

डॉ. अर्चना उपाध्याय

कबीर : भक्त, कवि और समाज-सुधारक

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्हे कोई।
जिन सहजै विषया तजी, सहज कहीजै सोई।।

"यह सहज-मार्ग मानव-धर्म का सबसे सुखद और सुकर मार्ग है। जो इसपर आरूढ़ हो जाता है, प्रपंचादि से उसकी मुक्ति हो जाती है। कबीर ने जब अपने लिए मानवतावाद का मार्ग अपनाया तो उन्होंने कठोर साधनाओं और धर्माडंबरों को त्यागना आवश्यक समझा। परिणाम यह हुआ कि मानव-मात्र कबीर की वाणी और संदेश के समीप पहुँचने में सफल हुआ।"[1]

मध्य युग के भक्त-कवियों में कबीरदास एक क्रांतिकारी व्यक्तित्व हैं। कबीर एक साथ भक्त, कवि तथा समाज-सुधारक हैं। कबीर निडर एवं स्पष्टवक्ता हैं। लेकिन, सभी कुछ बड़े सहज-भाव से हैं -- यह सहजता ही उनकी विशेषता है। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त विसंगतियों पर निर्भीकता से प्रहार किया। कबीर अपने समय में लोक-व्यवहृत आचरण और विचार से जहाँ भी असहमत हुए उसकी निंदा की। उन्होंने मौलिक चिंतन किया और विभिन्न धार्मिक तथा सामाजिक पाखंडों का अपनी तरह से खंडन किया। कबीर सत्ता और समाज के विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए अपने बनाए हुए मार्ग पर बढ़ते रहे। वे बहुआयामी व्यक्तित्व से संपन्न हैं। उन्होंने सभी दिशाओं से आती हुई प्रकाश की रश्मियों को ग्रहण किया, इसलिए उनके ज्ञान और चिंतन की दिशा भी असीम है। कबीर ने यह ज्ञान किसी पोथी को पढ़कर नहीं अर्जित किया है। उनका ज्ञान उनके अपने अनुभवों का सार है। इसे पाने के लिए वह कहीं आए-गए नहीं, यह तो चिंतन करते हुए स्वतः ही उनके हृदय में उत्पन्न हो गया --

करत विचार मन ही मन उपजी ना कहीं गया न आया।

अन्यत्र, कबीर ने पुनः स्वीकार किया है कि उनको चिंतन के द्वारा ही ज्ञान रूपी

निर्मल जल की प्राप्ति हो गई, उसी का वर्णन वह करते हैं --

चेतन, चेतत निकसी ओ निरू सो जलु निरमलु कथत कबीरू।

उनका संपूर्ण चिंतन मानवता से ओतप्रोत है। अपने समय में फैले जाति-पाति, ऊँच-नीच, छुआछूत, बाह्य आडंबर जैसी विषमताओं को तोड़कर नवीन मानवीय मूल्यों को स्थापित किया। कबीर की भक्ति तथा कविकर्म दोनों ही समाज-सुधार की भावना से अनुप्राणित हैं। कबीर भक्ति और कर्म को अलग-अलग नहीं मानते हैं। वे जीवन के सभी कर्मों को भक्ति के अधीन रख कर देखते हैं। इसलिए जीवन के दैनंदिन कर्मों को स्वच्छ और स्वस्थ होने की बात करते हैं। कर्म और भक्ति का यह योग ही समाज के लिए उपयोगी है।

कबीर मूर्ति-पूजन के सख्त विरोधी हैं। उनको मूर्ति मात्र पत्थर दिखाई देता है। उस पत्थर को पूजने का कोई अर्थ नहीं है। ईश्वर मूर्ति में नहीं है। उनका ब्रह्म तो निराकार है, उसका कोई रूप नहीं है। निर्गुण है, सभी गुणों से अतीत है। कबीर की यह धारणा किसी आस्थावान की भावना को आहत भी कर सकती है, पर इसकी उन्होंने परवाह नहीं की। वह तो अपनी ही धुन में कहते रहे --

पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहाड़।
घर की चक्की कोई ना पूजे, जाको पीसो खाय।।

कबीर कहते हैं कि पत्थर को परमेश्वर बनाकर समग्र संसार उसकी पूजा कर रहा है। जो इस भुलावे में (पत्थर में परमेश्वर है) पड़ा रहता है, वह काली धार में डूब जाता है अर्थात् वह अज्ञानांधकार में विलीन हो जाता है --

कबीर पाहन परमेसरू किया पूजे सबु संसार।
इस मर वासे जो रहे बूड़े काली धार।।

निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही कबीर के ध्यान के आधार हैं। उनका योग तो निर्गुणी है। कबीर का ब्रह्म किसी मूर्ति-विशेष में नहीं, अपितु घट-घट में प्रतिष्ठित है। उसे देखने के लिए साधना की अंतर्दृष्टि चाहिए, किसी मंदिर में आसन मारकर बैठने की आवश्यकता नहीं है। इसके साथ ही बाह्य आडंबर के भी प्रतिरोध का स्वर मुखर होता है। अपने इष्ट को पाने के लिए बाह्याडंबर की नहीं, बल्कि हृदय में प्रेम की आवश्यकता है। कबीर बार-बार पत्थर-पूजा का विरोध करते हैं। उनकी दृष्टि में ब्रह्म की उपासना को छोड़कर पत्थर पूजने से कोई लाभ नहीं है --

मन न रँगाये रँगाये जोगी कपड़ा।
आसन मारि मंदिर में बैठे,
ब्रह्म छाड़ि पूजन लगे पथरा।।

कबीर को वर्ण-व्यवस्था से वितृष्णा थी। वे जाति-पाति के नाम पर समाज में होने वाले भेद-भाव की तीव्र आलोचना करते हैं। उनकी नजर में जाति-पांति के आधार पर समाज को बाँटने की साजिश, ईश्वर के प्रति अपराध है। जब ईश्वर के दरबार में इस तरह का कोई भेदभाव नहीं है तो समाज में यह भेद कहाँ तक उचित है? कबीर के 'हरि' के यहाँ तो सभी मनुष्य बराबर हैं। व्यक्ति का महत्त्व उसकी जाति से नहीं आँका जाना चाहिए, असली महत्त्व तो उसके गुणों का है। संत कबीर जाति के नहीं, अपितु ज्ञान के कद्रदान हैं --

जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान।।

कबीर मानते हैं कि सभी मनुष्य एक ही विराट ब्रह्म की संतान हैं। सबकी उत्पत्ति उसी एक ज्योति से हुई है। इसी ज्योति का प्रकाश सभी मनुष्यों में व्याप्त है। फिर, किस आधार पर ब्रह्म और शूद्र में अंतर किया जा सकता है --

एक ज्योति से सब उत्पन्न कौन बामन कौन सूदा।।

सद्गुरु के प्रति कबीर के हृदय में असीम आस्था है। कबीर जीवन में गुरु की महिमा को पूरी निष्ठा से स्वीकार करते हैं। वे आत्मदर्शन के लिए गुरु द्वारा मार्गदर्शन को अनिवार्य मानते हैं, क्योंकि सद्गुरु के माध्यम से ही परम सत्य का साक्षात्कार हो सकता है। गुरु की कृपा के बिना जीव माया से मुक्त नहीं हो सकता और जब तक वह माया में लिप्त है तब तक ब्रह्म ज्ञान हो ही नहीं सकता। गुरु की कृपा हुए बिना अज्ञान रूपी अंधकार से मुक्ति नहीं मिल सकती है। कबीर के हृदय में गुरु की महिमा अनंत है तथा कबीर पर उनके अत्यंत उपकार भी हैं, क्योंकि सत्य को जानने वाले गुरु ने कबीर के नेत्रों को खोल दिया तथा उन्हें अनंत (ब्रह्म) के दर्शन करा दिए --

सद्गुरु की महिमा अनंत अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया अनंत दिखलाणहार।।

कबीर की गुरु पर अपार श्रद्धा है। गुरु ही परमेश्वर को देखने की दृष्टि देता है। सद्गुरु की कृपा से ही अज्ञानी शिष्य को ज्ञान का आलोक प्राप्त होता है और उस ज्ञान लोक में वह परम सत्ता को जानने-समझने में समर्थ होता है। इस भव-सागर से पार उतरने के लिए गुरु-ज्ञान परमावश्यक है। कबीर तो गुरु को गोविंद तुल्य, बल्कि गोविंद से भी पहले मानते हैं --

गुरु गोविंद दोउ खड़े को लागू पाँय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो बताय।।

कबीर ने सदैव विनीत होने के लिए मनुष्यों को प्रेरित किया। विनम्रता मनुष्य

का आभूषण है तथा क्षमाशीलता उसका सर्वश्रेष्ठ गुण है। झूठे स्वाभिमान और अहंकार में तनकर खड़ा मनुष्य वस्तुतः अपने हेय होने को साबित करता है। अपने से सबल व्यक्ति के सम्मुख झुकना कायरता या भय हो सकता है, किंतु अपने से निर्बल व्यक्ति के आगे विनम्र होना मनुष्य की वीरता का परिचायक होता है। मनुष्य का बड़प्पन क्षमाशीलता में है। दूसरों के द्वारा कष्ट मिलने पर भी उसका अहित नहीं करना चाहिए और न ही उसे किसी प्रकार से दंडित करना चाहिए। अपनी विनम्रता और क्षमाशीलता के बल पर हम अपनी श्रेष्ठता तो साबित करते ही हैं, साथ ही दूसरे व्यक्ति को भी नम्रता का पाठ पढ़ाते हैं। क्षणिक आवेश में न तो मनुष्य अपना भला करता है और न ही समाज का भला करता है --

क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात।।

कबीर ने क्षमा, दया, अपरिग्रह, साधु-संगति आदि को मनुष्य के लिए हितकारी माना है। इन सहज गुणों को अपना कर आत्मिक पतन से बचा जा सकता है। कबीर इन गुणों को मानव-धर्म के रूप में देखते हैं। इनके अभ्यास में किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। ये तो बड़ी सहजता से आत्मसात किए जा सकते हैं। इसी तरह लोभ और क्रोध को कबीर अधोपतन का मूल मानते हैं। लालच करने वाला समाज में अपना सम्मान खो देता है। लोभी व्यक्ति सबकी आँखों से गिर जाता है। क्रोध भी मानव का विनाश करता है। कबीर के अनुसार, दया ही सच्चा धर्म है, यह मनुष्य को मनुष्य बनाता है। लोभ सभी पाप का मूल है, क्योंकि लोभी व्यक्ति उचित-अनुचित की मर्यादा भूलकर केवल अपनी तृष्णा की पूर्ति में ही संलग्न रहता है। क्रोध मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है, यह मनुष्य का सर्वनाश करता है। क्षमा द्वारा मनुष्य को अपने अंतरात्मा को देखने की शक्ति मिलती है, उसे परमात्मा का साक्षात्कार होता है --

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ लोभ तहँ आप।।

कबीर समाज को ब्रह्म ज्ञान के साथ ही साथ व्यावहारिक दीक्षा भी देते हैं। मधुर वाणी सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ बनाती है तो वहीं कटु वाणी संबंधों में दरार पैदा करती हे। मीठे वचन से दूसरों का हृदय जीता जा सकता है। हृदय में कड़वाहट होगी तो वाणी भी अनायास कटु होगी। मन का अहंकार वाणी के रूप में फूटेगा तो वाणी में मधुरता कहाँ से आएगी? वाणी तो तभी मधुर होगी जब हृदय में भी मधुरता होगी। हृदय की मधुरता के लिए आवश्यक है कि हृदय अहंकार से रहित हो। मन के अंधकार को त्यागकर मीठी वाणी बोलना चाहिए। अहंकार से रहित मीठी वाणी, बोलने वाले

को भी शीतलता प्रदान करती है तथा सुनने वाले को भी सुख देती है। वाणी की सार्थकता तो तभी है जब वह बोलने वाले तथा सुनने वाले, दोनों को सुखी करे --

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होय।।

कबीर व्यक्ति को आत्म-चिंतन और स्व-सुधार की सीख देते हैं। दूसरों की निंदा करने से कुछ प्राप्त नहीं होगा, बल्कि निंदा करने वाला अपना अज्ञान और ओछापन दिखाता है। दूसरों के दोष न देखकर अपनी कमियों का मूल्यांकन तत्पश्चात्, उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इससे हमारे व्यक्तित्व का परिष्कार तथा विकास होगा। संसार के सभी मनुष्यों में कुछ न कुछ कमी अवश्य होती है, कोई भी व्यक्ति दोष-रहित नहीं हो सकता है। लेकिन, विडंबना यह है कि व्यक्ति को अपना दोष दिखाई नहीं देता, वह परछिद्रान्वेषण में ही भूला रहता है। कबीर, मनुष्यों को दूसरे की कमियों पर हँसने के लिए फटकारते हैं। वह कहते हैं कि अपने दोषों का अवलोकन करो और उसे सुधारो --

दोष पराए देखि करि, चल्या हसंत हसंत।
अपनै च्यंति न आवई, जिनकी आदि न अंत।।

कबीर परनिंदा के लिए तो सख्ती से मना करते हैं, क्योंकि उससे कोई सुखद परिणाम नहीं निकलता है। लेकिन आत्म-परिष्कार के लिए चहुँ ओर निंदकों से घिरा होना शुभ मानते हैं। अपने दोषों को तटस्थ रहकर देखने का साहस सबमें नहीं होता, लेकिन पराया दोष सहज ही दिखाई दे जाता है। जब अपना दोष दिखेगा ही नहीं तो उसका निराकरण कैसे होगा? अपनी कमियों को किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से जान लेने पर, संभव है कि हम उसे दूर करने का प्रयास करें। जो व्यक्ति हमारे दोषों की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करता है, वास्तव में वह हमारा कल्याण करता है। इसलिए कबीर निंदक का भी उपकार मानते हैं और उसे अपने समीप स्थित रखने के लिए कहते हैं। निंदा करने वाले को सदा अपने करीब रखना चाहिए, इससे यह लाभ होता है कि बिना किसी प्रयास के अपना दोष पता लग जाता है और मनुष्य उसे दूर कर निर्मल हो सकता है --

निंदक नेरे राखिये, आँगन कुटि छवाय।
बिन साबुन पानी बिना निरमल करे सुभाय।।

कबीर का युग विसंगतियों का युग था। समाज विभिन्न विसंगतियों के बीच भटक गया था। ऐसे समय में कबीर ने आत्मचिंतन से समदृष्टि पाई। इस समदृष्टि के आलोक में उन्होंने समाज को देखा और उसे सुधारने की आवश्यकता महसूस की। सुधारने की

इस प्रक्रिया में वे कभी बहुत कठोर हो गए तो कभी व्यंग्य का सहारा लिया, कभी उलटबाँसियों से अपना मर्म स्पष्ट किया तो कभी अति विनीत भी हो गए। कबीर ने समाज को सुधारने से ज्यादा उसका अज्ञान दूर करने की दिशा में प्रयास किया। अज्ञानांधकार छँटने के पश्चात् मनुष्य स्वतः ही विवेकवान हो जाता है, उसमें सही और गलत की भेद-बुद्धि विकसित हो जाती है। तब मनुष्य खुद सही मार्ग का चुनाव कर उस पर अग्रसर होगा। कबीर का विश्वास था कि आत्म-संशोधन के द्वारा ही व्यक्ति लौकिक सुख-शांति तथा आध्यात्मिक सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है।

कबीर सच्चे संत और साधक हैं, किंतु उनकी साधना निज आत्मोत्थान तक सीमित नहीं है। कबीर अपनी तपस्या से प्राप्त प्रसाद से संपूर्ण मानव-जाति का कल्याण चाहते हैं। उनकी वाणी उनके आंतरिक उद्वेग का परिणाम है, जिसका उद्देश्य लोक-मंगल है। कबीर के भीतर की तीव्र मानवीय संवेदना उन्हें अपने समय के अन्य भक्तों और कवियों से न्यारा बनाती है। "भारतीय काव्य परंपरा में कबीर का स्थान इसलिए विशिष्ट है कि उन्होंने एक नई परंपरा की शुरूआत की। इस नई परंपरा में भारतीय मूल्य पूरी तरह सुरक्षित है। इसमें भारतीय संस्कृति के गतिशील पक्ष सुरक्षित हैं। विश्व का कुटुंब के रूप में इसमें समाया हुआ प्रतीत होता है। करूणा की धारा इसमें प्रवाहमान है। अहिंसा का अकृत्रिक भाव इसमें है। सब कुछ की तथता इसमें है। कुल मिलाकर मनुष्य का एक सहज बिंब ही इस परंपरा में निहित है।"[2]

❑

संदर्भ

1. कबीर, मानवतावादी कबीर, संपादक-लेखक : विजयेंद्र स्नातक, तृतीय संस्करण, 1970, पृ. 245
2. कबीर का सच, संपादक : सोलजी, कवि : मिथक का अविराम साहित्य, ए. अरविंदाक्षन, संस्करण 2006, पृ. 44-45

लौ जलती रहे

मैं कब कहता हूँ कि मैं समूचे संसार को नैतिक बना दूँगा। हमारा प्रयत्न इसी दिशा में होना चाहिए कि समूचा संसार नैतिक बने, नैतिकता की लौ जलती रहे। प्रयत्न करने पर भी न बने तो वह हमारे पुरुषार्थ का दोष नहीं होगा।

— आचार्य तुलसी